अध्याय : 4

रघुवीर सहाय : राजनीतिक कवि

अध्याय : 4

रघुवीर सहाय : राजनीतिक कवि

प्रस्तावना

कवि रघुवीर सहाय संवेदनशील कवि होने के नाते उन्होंने प्रेम-शृंगार और प्रकृति को लेकर काव्य-यात्रा आरम्भ की है, किन्तु इसमें उनका मन नहीं रमा। समसामायिक राजनीतिक अनुगूँज उनकी कविता का मुख्य प्रतिपाद्य रहा है। कविता में राजनीतिक कडुवाहट की अभिव्यक्ति से उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का पता चलता है, उनकी कविता में प्रस्तुत राजनीतिक चिंतन अथवा स्पर्श सहज संवेदना के रूप में है। जहाँ कभी भी राजनीतिक तल्खियाँ हैं वे साहित्येतर हथियार के रूप में नहीं हैं।

के शब्दों में - "राजनीति की ओर मेरा यही रवैया है - संकटकालीन रवैया कह लीजिए - कि "वह बहुत जरूरी है" या "यह फिजूल है" दोनो फतवे संकट से भागने के बहाने हैं - वह बहुत जरूरी है, पर मैं भी अपने लिए बहुत जरूरी हूँ - अपनी उस कला परंपरा के लिए जिसमें मैं अपनी एक मूर्ति बनाता और ढ़हाता हूँ और आप कहते हैं कि कविता की है।"[1]

वास्तव में रघुवीर राजनीतिक-सामाजिक संदर्भों के प्रति सजग हैं। परन्तु उन्होंने अपनी कविता को राजनीति का निजी "प्लेटफार्म" मानने से इन्कार किया है।

समकालीन राजनीति का साक्षात्कार रघुवीर सहाय की कविता में होता है। भावी पीढ़ी के कवि रघुवीर सहाय ने राजनीति को कथ्य बनाकर बड़ी सार्थक कविताएँ लिखी हैं। उनकी कविता में राजनीतिक चेतना और कुछ नहीं, भविष्यत्

संसार है। यो प्रारम्भ की कविता में रघुवीर की रूचि राजनीति के प्रति नहीं है लेकिन बाद की कविता की पुस्तक "आत्महत्या के विरूद्ध" में गहरी राजनीतिक रूचि प्रदर्शित हुई है। स्वयं उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा है - "लोकतन्त्र-मोटे, बहुत मोटे तौर पर लोकतन्त्र ने हमें इन्सान की जिन्दगी और कुत्ते की मौत के बीच चॉप लिया है।"[2]

"एक अधेड़ भारतीय आत्मा" शीर्षक कविता में उनकी राजनीतिक रूझान बिल्कुल साफ और गहरी मालूम पड़ती है -

"हर संकट भारत में एक गाय
होता है
ठीक समय ठीक बहस कर नहीं सकती है
राजनीति
बाद में जहाँ कहीं से भी शुरू करो
बीच सड़क पर गोबर कर देता है विचार
हाय-हाय करते हुए हाँ-हाँ करते हुए हें-हें करते हुए
समुदाय
एक हजार लोग ध्यानमग्न सुनते हुए
एक अदद रिरियाता है सितार
जगे रहो जाने किस वक्त सब एकमत हो जाये।"[3]

कवि रघुवीर सहाय आज के जटिल तनाव के कारण अनेक प्रकार की बातें महसूस करता है। उनके कविताओं का ढंग पूर्ववर्ती कविताओं से निराला है। कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियों की भाँति लोकमंगल की कामना का दंभ नहीं भरा है। हा, "लोग मार तमाम लोगों" के सम्बन्ध की कविताएँ यह जरूर हैं। कवि रघुवीर सहाय ने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थितियों का आधार लेकर आज के व्यक्ति को जो "पिंजड़े में कैद सुग्गे"की हालत में है और जहाँ "देश की व्यवस्था का विराट वैभव व्याप्त है चारों ओर एक कोने में दुबक ही तो सकता है।" उसकी

स्थिति को अपनी कविताओं में उतारा है। स्वाधीनता प्राप्ति के -

"बीस वर्ष
खो गए भर में उपदेश में
एक पूरी पीढ़ी जनमी पली पुसी क्लेश में
बेगानी हो गयी अपने ही देश में।"[4]

इस प्रकार कवि ने समाज और देश ही नहीं पूरे युग की आत्मा को पहचाना है। इन बीस वर्षों में देश में फैले ढोंग, आडम्बर, कपट, झूठ, स्वार्थलिप्सा और भ्रष्टाचार के कारण व्यक्ति, समाज और शासन के आपसी सम्बन्ध टूट गए हैं। राजनीति के कारण सामाजिक जीवन का आत्मविश्वास जाता रहा। हमारी आशाओं को आघात पहुँचा। अनास्था और अस्वीकृति का उदय हुआ। देश की इस सच्ची स्थिति के बीच कवि "हमें घुमाता हुआ ले चलता है"। "हाँ-हाँ करता हुआ, हे-हे करता हुआ दल का दल", "महासंघ का मोटा अध्यक्ष", तोंददानी गोंददानी नेता" मंचों पर आदर्श बघारने वाले मंत्री और नेता सभी को दर्शाता हुआ कवि यथास्थिति को उघाडता है -

"बाँध में दरार
पाखंड वक्तव्य में
मिलावट दवाई में
नीति में टोटका
अहंकार भाषण में
आचरण में खोट हर हफ्ते मैंने विरोध किया
सचमुच स्वाधीन हो जाने का इतना भय
एक दास जाति में।"[5]

रघुवीर सहाय जानते हैं कि राजनीति आज एकमात्र सहारा है, सर्वाधिक प्रभावशाली शक्ति है। कवि ने अपनी कविता में उसका सार्थक उपयोग किया है। पर उन्होंने कभी भी राजनीति के लिए कविता नहीं लिखी वरन् कविता के ही

लिए राजनीति का प्रयोग किया। इस प्रकार राजनीति मात्र एक साधन है उनकी कविता का। क्योंकि कवि जानता है - "सब से मुश्किल और एक ही रास्ता है कि मैं सब सेनाओं से लडूं - किसी में ढाल सहित, किसी में निष्कवच होकर - मगर अपने को अन्त में मरने सिर्फ अपने मोर्चे पर दूं - अपने भाषा, शिल्प के और उस दोतरफा जिम्मेदारी के मोर्चे पर - जिसे साहित्य कहते हैं।"[6]

कवि अपने कवि होने को जानता है इसलिए वह कहता है कि राजनीति "वह बहुत जरूरी है पर मैं भी अपने लिए बहुत जरूरी हूँ - अपनी उस कला परम्परा के लिए।" इसलिए इनकी यह राजनीतिक कविताएँ रूढ अर्थों में राजनीतिक ढर्रे या प्रचार की कविताएँ नहीं। किसी विशेष राजनीति पार्टी या सिद्धान्त का प्रचार करनेवाली नहीं है। बल्कि यह राजनीतिक "इविल" से "टकराती" कविताएँ हैं। इसप्रकार उनकी राजनीतिक "इविल" को दिखाने वाली "लोकतन्त्रीय मृत्यु" कविता देखिए। जिसमें वर्तमान व्यवस्था के खिलाफ विरोध का स्वर उभरा है -

"एक झीना सा परदा या दोनों के बीच
लोगों के और मौसम के
मैंने उसे हटा दिया
कालातीत समय चारों ओर से घिर आया
न जीवन था उसमें, न मृत्यु थी
सिर्फ बेहिसाब असंगीतियों की धडकती सत्ता।"[7]

इस प्रकार यह कविताएँ सर्वव्यापी राजनीति में सामान्य व्यक्ति की स्थिति का परिचय देती है।

रघुवीर सहायजी ने अपने कविताओं के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि आज के जीवन को अनेक स्तरों पर राजनीति ने प्रभावित किया है। हमारे व्यवहार में, आपसी और सामाजिक सम्बन्धों में, कार्यालयों में राजनीति का प्रवेश है। रघुवीर सहाय राजनीति को मात्र परिवेश नहीं मानता बल्कि उसके द्वारा वह परिवेश का

व्यापक बोध ग्रहण करते हैं। उन्होंने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक अनुभवों द्वारा अपने मानसिक क्षितिज का विस्तार किया है।

रघुवीर सहाय ने राजनीति का आधार ग्रहण किया पर वह राजनीति का "पिछलग्गू न होकर, "विरोध की राजनीति" को अपनाता है। इसलिए उनकी कविता "राजनीति की कविता" नहीं बनती वरन् राजनीति "कविता की राजनीति" का रूप ग्रहण करके आती है। उनके शब्दों में जो ताकत "आदमी" को बाहर को सही और आदमी के अन्दर को मजबूत और स्वाधीन करती है", वही "ताकत" कविता की राजनीति है। इस प्रकार राजनीति से जुड़ा उनका काव्य सच्चे अर्थों में समाज से भी जुड़ा है।

राजनीति आज बहुत गहरे रूप में हमारे जीवन में घुस आयी है। उससे तटस्थ रहना ईमानदारी नहीं। इसी कारण कवि ने आज की राजनीति से शासित मनुष्य के अन्तर्द्वन्द्व और उसके संघर्ष को व्यक्त किया है। आज के उन राजनीतिक षड्यंत्रों को और उन दबावों को जिनसे वह पददलित होता है, कवि ने वाणी दी है। इस प्रकार उनकी कविता में "मानवीय सार्थकता है" और तभी वह रचनात्मक स्तर पर राजनीति से नया सम्बन्ध कायम कर सकी है। कवि रघुवीरजी ने राजनीति से नया सम्बन्ध अन्ततः मनुष्य की सम्पूर्ण परिभाषा की खोज की है। वह कविताओं को प्रतीक मुद्राओं, रूढियों में धंसकर अमूर्त हो गयी मानव प्रतिभा को फिर जीवन्त, ठोस और तात्कालिक बनाने की कोशिश करते हैं। वह उसे सभी जुलूस, नारेबाजी, भाषण, कर्फ्यू, मतदान, बहस, षड्यंत्र, क्रान्ति, चुनाव, संसद में यानी उसकी रोजमर्रा की दुनिया रहने, पहचानने और प्रतिष्ठित रहने की कोशिश उसके कविता में हो गयी है।

वस्तुतः आज बाहरी दुनिया का तनाव इतना बढ़ गया है कि कविता में राजनीति अनिवार्य हो गयी है। इसके बिना कवि समकालीन सच्चाई को ईमानदारी से प्रामाणिक रूप में अभिव्यक्त नहीं कर सकता। इसलिए आज की गहरी असंगत

समाज व्यवस्था के विरूद्ध कवि का रोष प्रकट हुआ है। कवि रघुवीरजी ने "कलात्मकता" के लिए रूमानियत का सहारा नहीं ढूँढा क्योंकि उनकी कविता सार्थक है; क्योंकि वह समकालीन है। राजनीतिक दबाव में पिसते व्यक्ति की छटपटाहट और उसके चित्कार को व्यक्त करती है।

पिछले बीस वर्षों के समय में भारतीय मनुष्य की नियति एक भूल-भूलैया में फंसी रहीं, महान भारतीय अतीत और उज्ज्वल भविष्य की प्रभा से उसके राज्यपालों उसके राजदूतों के मुखड़े दमकते रहे। परन्तु उसकी अपनी देह और अपनी आत्मा में जाग न पड़ सकी।" रघुवीर सहाय तो यह भी मानते हैं कि "समाज को बदलना अब सम्पूर्ण राजनीतिक तन्त्र को बदलना है। रघुवीर सहाय राजनीतिक सच्चाइयों से कतराने को एक कायरता मानते हैं और उनको विश्वास है कि यह कायर "टूटेगा"। आज़ादी मिले हमें बीस वर्ष हो गए हैं इन बीस वर्षों में हमारे देश में जो आडम्बर, ढोंग, स्वार्थ और झूठा फैला है, वह कल्पनातीत है। सत्ताधारी और सुविधाभोगी वर्ग केवल अपने हित और अपने हक में डूबा है। कवि का आक्रोश इसलिए निरर्थक नहीं कहा जा सकता -

"गांव गांव में दिया जन जन को विश्वास
नेकराम नेहरू ने
कि अन्याय आराम से होगा आम राय से
होगा नहीं हो
कुछ नहीं होगा गांव का"[8]

× × × ×

जनसंघ का मोटा अध्यक्ष
धरा हुआ है गद्दी पर
खुजलाता है उपस्थ
सर नहीं·····

हर सवाल का उत्तर देने से पेशेवर
आँख मार कर पच्चीस बार हँसे वह, पच्चीस बार
हँसे बीस अलवार
एक नयी ही तरह की हँसी यह।"[9]

दूसरी ओर आम आदमी की दशा कितनी दयनीय और निरूपाय है -

"बीस वर्ष बीत गए
लालसा मनुष्य की तिल-तिल कर मिट गई....
टूटते टूटते जिस जगह आकर विश्वास हो जाएगा
बीस साल
धोखा दिया गया
वहीं मुझे फिर कहा जाएगा विश्वास करने को
पूछेगा संसद में भोला भाला मंत्री
मामला बताओ हम कार्रवाई करेंगे
हाय हाय करता हुआ हां हां करता हुआ हें हें करता हुआ
दल का दल
पाप छिपा रखने के लिए एक जुट होगा
जितना बडा दल होगा उतना ही खाएगा देश को।"[10]

इसप्रकार रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओं में आज की भयावह दुनिया के सच्चे चित्र खींचे हैं। इनकी कविताओं में शासन तंत्र जैसे नंगा हो गया है। प्रजातन्त्र के षड़यंत्र को कवि ने आँखे खोलकर देखा और समझा है। उसी की साफ सुथरी सपाट अभिव्यक्ति अपनी कविताओं में की है।

रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओं द्वारा मनुष्य की आत्मा और निजीपन तथा सार्वजनिक घटनाओं और राजनीति की ठोस तत्कालिकता को एक अनिवार्य,

अटूट संयोग में चरितार्थ किया है। रघुवीर सहाय के कविता का लेखन राजनीति की पोल खोलता है। प्रजातन्त्र के प्रपंचों और स्वार्थों को उघाडता है। उनकी दृष्टि सामाजिक दायरों से निकलकर देश की पूरी समस्याओं के परिवेश में समा गई है। कवि ने राजनीति को कविता के हित ही में अपनाया है। वस्तुतः राजनीति की ये कविताएँ "वयस्क विवेक" की "हिस्सा लेती कविताएँ" हैं। ये कविताएँ न तो किसी आन्दोलन से, न किसी दल से और न ही किसी विशेष पार्टी से जुडी है। ये कवि की "निजी मुद्रा हैं स्वयं स्फूर्त और मुक्त।"

जनता के लोकतंत्र को सम्भव करने के सारे प्रयासों को विफल करने की शासक वर्गों ने निरन्तर चेष्टा की है। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व राष्ट्रीय पूंजीवादी वर्ग के कब्जे में था। अतः यह स्वाभाविक ही था हिन्दुस्तान में वे ऐसा लोकतन्त्र स्थापित करते जो पूंजीपति, जमींदार वर्ग का हित, साधन करता हो। स्वभावतः उन्होंने हिन्दुस्तान का लोकतांत्रिक ढाँचा पश्चिम के विकसित देशों के लोकतांत्रिक ढाँचे की नकल में रखा। इस ढाँचे के कारण हिन्दुस्तान जैसे विकासशील राष्ट्र को एक सीमित राजनैतिक स्वतंत्रता तो मिल गयी लेकिन आर्थिक स्वतंत्रता नहीं मिल सकी। समाज वर्ग विभाजित होने तथा राज्य सत्ता को पूंजीपति जमींदार वर्ग का हित साधन होने के कारण देश में आर्थिक लोकतंत्र संभव नहीं हो सका।

कवि रघुवीर सहाय ने अपनी साठोत्तर कविताओं में वर्तमान व्यवस्था के मनुष्य-विरोधी दुहरे चरित्र को नंगा करने की लगातार कोशिश की है, तथा लोकतंत्र के नाम पर लोकतान्त्रिक संस्थाओं और उपकरणों को भ्रष्ट करने वाले जन-प्रतिनिधि के अश्लिल चरित्र का खोखलापन उघाड़ते हुए उस पर प्रहार किया है -

"सिंहासन उंचा है, सभाध्यक्ष छोटा है
अगणित पिताओं के
एक परिवार के

मुह बाए बैठे हैं, लडके सरकार के
लूले, काने, बहरे, विविध प्रकार के
हलकी सी दुर्गन्ध से भर गया है सभा कक्ष
सुनो वहां कहता है
मेरा प्रतिनिधि
मेरी हत्या की करूण कथा
हंसती है सभा
तोंद मटका
ठठाकर
अकेले अपराजित सदस्य की व्यथा पर
फिर मेरी मृत्यु से डर कर चिंचिया कर
कहती है
अशिव है, अशोभन है, मिथ्या है।"[11]

पूँजीवाद ने मनुष्य और मनुष्य के बीच सम्बन्धों को मनुष्य और वस्तु के बीच सम्बन्धों में बदल देने की परिस्थितियाँ पैदा की है। इस पूँजीवादी व्यवस्था में नारी का विषम जीवन स्थितियों के बीच विडम्बनाओं का शिकार हो जाना नियति है। "पढिये गीता" कविता में इस नियति को राजनीतिक व्यंग्य के माध्यम से कवि रघुवीर सहाय ने प्रस्तुत किया है। वह व्यंग्य अपने प्रभाव में करूणा की सृष्टि करता है -

"पढिए गीता
बनिए सीता
फिर इन सब में लगा पलीता
किसी मूर्ख की हो परिणीता
निज-घर बार बसाइये
होंय कटीली

आंखे गीली
लकडी सीली
तबियत ढीली
घर की सबसे बडी पतीली
भर कर भात पसाइए।"[12]

यथार्थ प्रतिपक्ष नहीं होने के कारण यथार्थ क्रांतिकारी शक्तियों द्वारा जब सत्ता छीनने का खतरा उत्पन्न होता है तो बुर्जुआ प्रतिपक्ष सत्ता पक्ष के साथ होकर इन क्रांतिकारी शक्तियों का विरोध करता है। तात्पर्य यह है कि बुर्जुआ लोकतंत्र में सत्ता पक्ष और बुर्जुआ प्रतिपक्ष दोनों ही जनता की यथार्थ मुक्ति के लिए प्रयत्नशील नहीं होते। रघुवीर सहाय लिखते हैं -

"पांच दल आपस में समझौता किए हुए
बडे-बड़े लटके हुए स्तन हिलाते हुए
जांघ ठोककर बहुत दूर की विदेश नीति पर

हाँकते-डाँकते मुंह नोच लेते हैं
अपने मतदाता का···।"[13]

रघुवीर सहाय ने सामान्य व्यक्ति के समान विश्व की बड़ी-बड़ी ताकतों की कथनी और करनी में अन्तर माना है। ऊपर से शांति दिखने वाली ये बड़ी बड़ी ताकते अन्दर से किसी खूंखार दरिन्दों से कम नहीं होती। आन्तर्राष्ट्रीय राजनीति स्वार्थ-प्रेरित हैं। विभिन्न देशों के राष्ट्रप्रमुख आपस में यदि कोई समझौता भी करते हैं तो वह भी परस्पर अदल-बदल की भावना से प्रेरित होता है। जनता का हित राजनीति नहीं देखती भूखों, असहायों पर दृष्टि कौन डालता है ?

"पर राष्ट्र मंत्रियों ने दो नियम बताये
दो, पारपत्र उसको, जो उडकर आये

दो पारपत्र उसको जो उडकर जाये
पैदल को हम केवल तब इज्जत देंगे
जब देकर के बंदूक उसे भेजेंगे
या घायल से घायल अदले-बदलेंगे
पर कोई भूखा पैदल मत आने दो
मिट्टी से मिट्टी को मत मिल जाने दो
वरना दो सरकारी का जाने क्या हो।"[14]

रघुवीर सहाय के कविता को जो स्वरूप उभर कर आया है उसमें राजनीति एक धारणा नहीं प्रत्युत एक अनुभव है। रघुवीर सहाय का कहना है - "कविता राजनीतिक नहीं होती, कविता,कविता ही होती है। दोनों तरह की जीवन-विधियों में जो अन्तर होता है वह रहता ही है। जहाँ दोनों जुड़ते हैं वह कविता का अंतर होता है।"[15]

कवि रघुवीर सहाय ने साठोत्तरी कविता की दौर में वर्तमान व्यवस्था के मनुष्य विरोधी दोहरे चरित्र को नंगा करने का प्रयत्न किया है तथा लोकतंत्र के नाम लोकतांत्रिक समस्याओं और उपकरणों को भ्रष्ट करने वाले जन-प्रतिनिधियों के अश्लील चरित्र का खोखलापन उतारते हुए उस पर प्रहार किया है...

"सिंहासन ऊंचा है, सभाध्यक्ष छोटा है
अगणित पिताओं के
एक परिवार के
मुँह बाए बैठे हैं लडके सरकार के
लूले, काने, बहरे, विविध प्रकार के
हलकी सी दुर्गन्ध से भर गया है सभाकक्ष।"[16]

कवि रघुवीर सहाय ने देखा है कि भारत की शासन व्यवस्था पर पिछले 4 दशकों से एक ही परिवार का एक छत्र राज्य है। यथार्थ में यही उनकी निरंकुशता का परिचायक है। जहाँ एक ओर यह स्थिति है कि सत्ता की बागडोर वंश दर वंश सम्हाली जा रही है, वहीं दूसरी ओर सत्ता की सीमा रेखाओं में प्रवेश करना भी जनसाधारण के लिए कठिन प्रतीत हो रहा है। इस सम्बन्ध में जन सामान्य की स्थिति का विश्लेषण करते हुए रघुवीर सहाय कहते हैं -

"मैं होऊं मेरी मां होवे
दोनों में से कोई होवे
अधिकार हमारा है
भारत का भावी प्रधानमन्त्री
होने का अधिकार हमारा है।"[17]

दमन और आतंक से भरे वर्तमान शासन में व्यक्ति के अस्तित्व की सबसे सहज और मानवीय अभिव्यक्ति हंसी आज विचित्र विडम्बनाओं का शिकार हुई है। वर्तमान समय में हंसी समाप्त होती जा रही है; एक दिखावट हंसी का उपयोग आत्म-रक्षार्थ किया जा रहा है। रघुवीर सहाय की कविता "हंसो-हंसो जल्दी हंसो" में इस विडम्बनापूर्ण हंसी से साक्षात्कार दृष्टव्य है -

"हंसो हंसो जल्दी हंसो
इसके पहले कि वह चले जांय
उनके हाथ मिलाते हुए
नजरें नीची किए
उसको याद दिलाते हुए हंसो
कि तुम कल भी हंसे थे।"[18]

"आप की हँसी" इस कविता में शोषित जनों की विवशता पठनीय है। कवि रघुवीर सहाय ने शासक वर्ग के प्रतिनिधियों की अश्लील और भयावह

हंसी का चित्रण निम्न रूप में किया है -

"निर्धन जनता का शोषण है
कह कर आप हंसे
सबके सब है भ्रष्टाचारी
कह कर आप हंसे
चारों ओर बडी लाचारी
कह कर आप हंसे।"[19]

"आत्महत्या के विरूद्ध" कविता संग्रह में "नेता क्षमा करे" शीर्षक कविता में आज की शासन व्यवस्था के प्रति तिलमिलाहट, नफरत और आक्रोश के भाव भी व्यक्त किए गए हैं। कुछ न कर पाने की अनुभूति से जन्मी पड़ी पीढ़ी के बारे में कवि कह उठा है -

"लोगों मेरे देश के लोगों और उनके नेताओं
मैं सिर्फ एक कवि हूं
मैं तुम्हें रोटी नहीं दे सकता न उसके साथ खाने
के लिए गम
न मैं मिटा सकता ईश्वर के विषय में तुम्हार सम्भ्रम।"[20]

गिरीश की मौत पर, पुलिस रपट, मेरा प्रतिनिधि, सफल जीवन, नेता क्षमा करें, एक अधेड भारतीय आत्मा जैसी कविताएँ रघुवीर सहाय की प्रतिनिधि कविताएँ हैं जिनमें साठोत्तरी पीढ़ी का मोहभंग वर्णित है। कहीं आम-राय से अन्याय को दूर करने का आश्वासन दिया गया, कहीं भोले-भाले मन्त्री ने कहा कि मामला बताने पर कार्यवाही करेंगे। इसके विपरित यह हुआ कि "चालीस वर्ष खो गए उपदेश में।" दवाइयों में मिलावट आ गई भाषण में अहंकार आ गया और महासंघ के मोटे अध्यक्ष यानी सदस्य नेता सभी मिलकर एक नयी तरह की हँसी हंसने लगे। यह सब राजनीति का परिणाम है यही बात रघुवीरजी ने प्रस्तुत की है।

रघुवीर सहाय ने अपनी परवर्ती कविताओं में यथार्थ को घेरा है उसकी छानबीन करते हुए यह तथ्य सहज उभरकर आता है कि जो चीज रघुवीर सहाय के यहाँ कविता में वर्णित अनुभव को निरे अखबारी यथार्थ से अलग करती है वह है उनका इन समस्त घटनाओं, प्रसंगों एवं सन्दर्भों में छिपी हुई सूक्ष्म हलचलों का मानवीय बोध यथार्थ को यह साक्षात्कार मात्र उसे यथा-तथ्यता के साथ प्रस्तुत कर देने में नहीं है प्रत्युत इस साक्षात्कार में बनते हुए संवेदना रूप को पहचानने में है। रघुवीर सहाय की कविता में राजनीति अपने पूरे परिवेश के साथ उभरी है। संसद की विशेष स्थिति का चित्रांकन करते हुए कवि कह उठा है -

"टूटते टूटते
जिस जगह आकर विश्वास हो जायेगा कि
बीस साल
धोखा दिया गया
वहीं मुझे फिर कहा जायेगा विश्वास करने को
पूछेगा संसद में भोला-भाला मंत्री
मामला बताओ हम कार्रवाई करेंगे
हाय-हाय करता हुआ हां-हां करता हुआ हें-हें करता हुआ
दल का दल
पाप छिपा रखने के लिए एक जुट होगा।"[21]

राष्ट्रीय कर्णधारों ने समय आ गया है कि राजनीति को अपनाया। आकाशवाणी के केन्द्रो में, मन्त्रालयों में, विभिन्न समाचार पत्रों में यही दोहराया जाने लगा कि समय आ गया है हमें कठोर परिश्रम करना चाहिए व समय आ गया है कि पूर्ण निष्ठा से काम करना चाहिए, समय आ गया है सब ठीक हो जाएगा, किन्तु समय कभी नहीं आया। वह हमसे रूठा ही रहा। रघुवीर सहाय "आत्महत्या के विरूद्ध" कविता में कह उठे हैं -

"समय आ गया है जब तब कहता है सम्पादकीय
हर बार दस बरस पहले मैं कह चुका होता हूं कि समय
आ गया है
एक गरीबी, उबी पीली रोशनी, बीबी
रोशनी, धुन्ध, जाला, यमन, हरमुनियम अदृश्य
डब्बाबन्द शोर
गाती गला भींच आकाशवाणी
अन्त में टड़ंग।"[22]

राजनीति के बदलते मानदण्डों ने सम्पूर्ण परिवेश को प्रभावित किया। आपत्ति के समय ही यथार्थ मित्र की पहचान होती है। आगे-पीछे सहयोग और मित्रता की दुहाई देने वाले देशों की पोल युद्ध के समय ही खुलती है इसीलिए देश का कवि क्षुब्ध होकर समस्त राष्ट्रों पर आरोप लगाते हुए कहता है -

"ठीक वक्त पर भी बोल जाते हैं
सभी लुजलुजे हैं, थुलथुले हैं, लिबलिब
पिल-पिल हैं
सबमें पोल है सबमें झोल है
सभी लुजलुजे हैं।"[23]

रघुवीर सहाय की राजनैतिक कविताएँ समय की राजनीति को स्पष्ट करने में सक्षम रही है। वैसे भी राजनीति के साथ अपनी रचनाकारिता के स्वतंत्र सम्बन्ध को उन्होंने स्पष्ट करते हुए कहा है - "मैं यह मानकर चलता हूँ कि राजनीति एक अच्छे और सही अर्थ में एक रचनात्मक कर्म के रूप में अनिवार्य होनी चाहिए, वहाँ मैं यह भी मानकर चलता हूं कि मेरा जो लेखन है या मेरा जो रचना साहित्य रचना का जो काम है वह इससे स्वतंत्र है। मैंने यह माना है कि राजनीति यानि सामूहिक कर्म आवश्यक है, समाज को बदलने के लिए वहाँ मैंने यह भी माना

है कि मैं एक व्यक्ति हूँ, निजी में और मेरे कलाकार सहित मैं समाज के लिए बहुत आवश्यक हूँ।"[24]

राजनीति से रघुवीर सहाय के इस स्वतंत्र रिश्ते के पीछे उनका यह विश्वास है कि एक रचनाकार की हैसियत से उनका मूल कर्म है सच्चाई को "ढूँढना और पकड़ना" यानि यथार्थ को सम्पूर्णता में देखना।

जिस जनता के पक्ष में रघुवीर सहाय राजनीति को अपने रचना कर्म से सृजनात्मक अनुभव देना चाहते हैं। आत्महत्या के विरूद्ध की पहली कविता "नेता क्षमा करें" में वे जनता के साथ अपने यथार्थ संबंध की स्थिति तथा उसे सृजनात्मक बनाने के अपने प्रयास को स्पष्ट करते हैं। कविता के आरम्भ में ही वे यथार्थ के नये परिप्रेक्ष्य में अपने कवि की सीमाएँ स्पष्ट करते हुए देश के नेताओं और लोगों की उन परम्परित झूठी और सर्जनात्मक अपेक्षाओं को पूरा न कर पाने के लिए क्षमा याचना करते हैं। साथ ही वर्तमान यथार्थ की जटिलता के सन्दर्भ में नेता तथा जनता से अपना सम्बन्ध परिभाषित करते हुए अपना कवि कर्म भाषित करते हैं ।

"नेता क्षमा करें" कविता में प्रचलित नेतृत्व के कर्म निस्सारता दिखाते हुए रघुवीर सहाय इसकी विसंगतियों को स्पष्ट करते हुए कहते हैं -

"फिर कुछ लोग उठे बोले कि आइए
तोड़ें पुरानी-फिलहाल मूर्तियाँ
साथ न दो हाथ ही दो सिर्फ उठा
झोले में बन्द कर एक नई मूर्ति मुझे दे गये।"[25]

उक्त पंक्तियों का तात्पर्य यह है कि पहले तो नेतृत्व ने मूर्ति भंजन के आदेश दिये किन्तु एक मूर्ति के तोड़ते-तोड़ते दूसरी नयी मूर्ति स्थापित कर दी गयी। देश ने एक पाखंड का विरोध किया किन्तु नकली विरोध की इस प्रक्रिया ने दूसरे पाखंड को जनता के साथ जोड़ दिया।

रघुवीर सहाय ने जनतंत्र के प्रति किसी प्रकार का भ्रम नहीं पाला था हां जनतांत्रिक व्यवस्था के प्रति उसमें आक्रोश अवश्य था। उसने देखा कि स्वतंत्रता के बीस पच्चीस वर्षों के पश्चात् भी उसके हाथों कुछ नहीं आया। इन वर्षों में
21| या तो वह उपदेश सुनता रहा या धोखा खाता रहा तब कवि रघुवीर सहाय कह उठे हैं -

"बीस वर्ष
खो गए भर में उपदेश में
एक पूरी पीढ़ी जनमी पली पुसी क्लेश में
बेगानी हो गयी अपने ही देश में।"[26]

आपत्-काल लगने के पूर्व ही रघुवीर सहाय की कविताएँ उसका आभास देने लगी थीं। आज भारतीय जनता के लिए वही आभास एक अनुभूति बन चुका है। अपनी कविता में रघुवीर सहाय आतंक भरे समाज तथा उसके दमन की रीतियों-नीतियों का आभास प्रस्तुत करते हैं -

"इस लज्जित और पराजित युग में
कहीं से ले आओ वह दिमाग
जो खुशामद आदतन नहीं करता
कहीं से ले आओ निर्धनता
जो अपने बदले में कुछ नहीं मांगती
और उसे एक बार आँख से आँख मिलाने दो
जल्दी कर डालो कि फलने-फूलने वाले हैं दो लोग
औरतें पिएंगी, आदमी खाएंगे - रमेश
कि किसी की कोई राय न रह जाएगी - रमेश
क्रोध होगा पर विरोध न होगा
अर्जियों के सिवाय - रमेश
खतरा होगा खतरे की घंटी होगी
और उसे बादशाह बजाएगा - रमेश।"[27]

शोषण के द्वारा निरन्तर अधिकाधिक वैभव संग्रह करनेवाला शोषक सत्ताधारी वर्ग अपने को बनाए रखने के लिए जनता के सारे अधिकार छीन लेने वाला होता है। इस भयावह स्थितियों के बीच भी विडम्बना तो यह होती है कि सत्ताधारी वर्ग के जो लोग लोकतंत्र के लिए खतरा उत्पन्न करते रहे, वही संकट को प्रकट करने वाले संचार तथा अन्य माध्यमों द्वारा यह दुहराते हुए थके नहीं कि लोकतन्त्र तथा देश पर खतरा उत्पन्न हो गया है। ऐसे में लोकतन्त्र को बनाए रखना कितना कठीन होता है। कवि रघुवीर सहाय ने "लोकतन्त्रीय मृत्यु" शीर्षक कविता में यह बात कहने का प्रयास किया है -

"दिल्ली के बसन्त का वह विशेष दिन था
गरमी थी और हवा थी जो धूप को उडाये लिए जाती है
सिमटे हुए लोग उसमें बैठे थे,
मृत्यु की खबर की प्रतीक्षा में।"[28]

रघुवीर सहाय कहते हैं - राजनीति के कारण सब लोग भयभीत हैं, आतंकित हैं, अपराधीपन का भाव लिए हुए हैं तब कवि कह उठा है -

"घर के भीतर एक थुलथुल राजनीतिक देह में
जो भी गतिशील है अपनी ओर से जीने के लिए लड़ता है
अपराधी से आते है राज्यपाल, मुख्यमंत्री, विधायक
बस्ते हुए से जाते है।"[29]

आज राजनीति से सरकार ने जनता के अधिकारों को छीनकर भारतीय जनता को पंगु बना दिया है। अपने मौलिक अधिकारों से वंचित जनता न तो अपने विरोध में वक्तव्य दे सकती थी, न सभा कर सकती थी। अखबारों पर सेंसर लागू कर दिया गया था। दूसरी न्यूज एजेंसियों को समाप्त करके सरकारी न्यूज एजेंसी "समाचार" स्थापित की गई थी ताकि शासन का सीधा नियन्त्रण रहे। तथा कथित सुरक्षा के नाम पर देश के दो साल से अधिक लोग जेल में बन्द कर दिए गए

थे। उन्हें न्यायालय में जाने का अधिकार नहीं था और यह भी जानने का अधिकार नहीं था कि उन्हें क्यों गिरफ्तार किया गया है। सम्बन्धियों को भी यह खबर नहीं थी कि वे कहाँ हैं ? दर्शाया जा रहा था कि प्रधानमंत्री का चुनाव, चाहे उसने कितना भी खुलकर भ्रष्टाचार क्यों न किया हो, अदालत में उसे चुनौती नहीं दी जा सकती, क्योंकि यह पद लोकतांत्रिक प्रक्रिया से उपर है। जनता के प्रतिनिधि वे संसद सदस्य थे जिन्होंने इसका विरोध किया जेल में बंद कर दिए गए। पूरा देश जैसे इंदिरा गांधी की हिरासत में बन्द कर दिया गया हो। इस भयपद स्थितियों के बोलने पर तो पाबंदी थी लेकिन इन्दिरा गांधी उन दिनों रोज ही यह उद्घोष कर रही थी कि लोकतन्त्र पर खतरा है, वे लोकतन्त्र की रक्षा करना चाहती है। कवि रघुवीर सहाय ने इस राजनीतिक अवस्था प्रस्तुत करते वक्त कहा है -

"खतरा होगा, खतरे की घन्टी होगी
और उसे बादशाह बजाएगा - रमेश।"[30]

अनुशासन पर्व पर नारी जाति भी कुछ कम अपमानित नहीं हुई। भले ही सत्ता ने स्त्रियां को उत्पीड़ित करने को न कहा हो फिर भी प्रशासन के सामान्य कर्मचारी समर्पित भावना को दर्शाने के लिए जाने कितने घृणित कार्य कर बैठते हैं। इस यथास्थिति को प्रस्तुत करते वक्त कवि रघुवीर सहाय कह उठे हैं -

"कई कोठरियां थी कतार में
उनमें किसी में एक औरत ले जाई गई
थोड़ी देर बाद उसका रोना सुनाई दिया
उसी रोने से हमें जाननी थी एक पूरी कथा
उसके बचपन से जवानी तक की कथा।"[31]

अनुशासन-पर्व में शासन तंत्र में व्यक्ति के हंसने पर भी प्रतिबन्ध था। उसकी हंसी पर भी निगाह रखी जाती थी। इसीलिए रघुवीर सहाय जनता को हंसने के पूर्व स्थितियों को सोचने-समझने की सलाह देते हैं। वे स्पष्ट करते हैं-

"हंसो तुम पर निगाह रखी जा रही है
हंसो अपने पर न हंसना क्योंकि उसकी कडवाहट
पकड़ ली जायेगी और तुम मारे जाओगे
ऐसे हंसो कि बहुत खुश न मालूम हो
वरना शक होगा कि यह शख्स शर्म में शामिल नहीं
और मारे जाओगे

× × × × ×

और ऐसे मौकों पर हंसो
जो कि अनिवार्य हो
जैसे गरीब पर किसी ताकतवर की मार
जहाँ कोई कुछ नहीं कर सकता
उस गरीब के सिवाय
और वह भी अक्सर हंसता है।[32]

कवि रघुवीर सहाय ने अपने कविताओं में काल की भयावह स्थिति का जो विश्लेषण किया है वह हृदय को छू लेने वाला है। जनता के संत्रास और कुर्सीधारियों की उदण्डता एवं स्वार्थ-लोलुपता पीड़ादायक है। "हंसो हंसो जल्दी हंसो" की कविताएँ इस तथ्य पर भी प्रकाश डालती है कि पुलिस का आतंक जनता पर किस तरह बढ जाता है। पुलिस व्यक्ति के वक्तव्य का आशय अपनी अभिरूचि एवं परिस्थिति के अनुसार होती थी और व्यर्थ ही सज्जन एवं जन प्रताड़ित किये जाते थे। उस युग में जनता और शासन भी एक दूसरे से दूर हो चुके थे। उनमें मानो आँख-मिचौनी और लुका-छिपी का खेल चल रहा था। रघुवीर सहाय कविता के माध्यम से कह उठे हैं -

"मैं अभी आया हूँ सारा देश घूम कर
पर उसका वर्णन दरबार में करूंगा नहीं
राजा ने जनता को बरसों से देखा नहीं
यह राजा जनता की कमजोरियां न जान सके इसलिए मैं
जनता के क्लेश का वर्णन करूंगा नहीं इस दरबार में।"[33]

जब निर्धन जनता का शोषण हो रहा था। भ्रष्टाचार का बोलबोला था। व्यक्ति विवश था। वह अपने आप को निस्सहाय मानता रहा। तब इस शोषण के बारे में कवि रघुवीर सहाय ने लिखा है -

"निर्धन जनता का शोषण है
कह कर आप हंसे
लोकतंत्र का अन्तिम क्षण है
कह कर आप हंसे
सब के सब है भ्रष्टाचारी
कह कर आप हंसे
चारों ओर बड़ी लाचारी
कहकर आप हंसे
कितने आप सुरक्षित होंगे
मैं सोचने लगा
सहसा मुझे अकेला पाकर
फिर से आप हंसे।"[34]

शासन तन्त्र की असफलता का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है कि व्यवस्थित युग में व्यक्ति का जीवन एकदम सस्ता हो जाये। पता नहीं कब उसे अपने प्राण गंवाने पड़े, कब उसकी हत्या हो जाये। रघुवीर सहायजी के कविता में यह उदा· देखिए -

"खड़ा हुआ वह बीच सड़क पर
दोनों हाथ पेट पर रखकर
सधे कदम रख करके आये
लोग सिमट कर आँख गड़ाये
लगे देखने की उसको जिसकी तय था हत्या होगी।"[35]

जब सत्ता सब कुछ अपने हाथ ले लेती है, जब जनता विवश, असहाय, मूक, निर्जीव, अधिकारहीन अक्षम बनी होती है तब शासक मनचाहा करते हैं फिर भी वे यही दम भरते हैं कि जो कुछ भी वे कर रहे हैं जन-हिताय ही कर रहे हैं। जनता के मौन को उनकी निष्क्रीयता माना जाता है। सत्ता के आश्वासन की नीति अधिक उदार हो उठती है। इस बात को प्रस्तुत करते वक्त कवि रघुवीर सहाय कह उठे हैं -

"हमने बहुत किया है
हम ही कर सकते हैं
हमने बहुत किया है
पर अभी और करना है
हमने बहुत किया है
पर उतना नहीं हुआ है
हमने बहुत किया है
जितना होगा कम होगा
हमने बहुत किया है
जनता ने नहीं किया है
हमने बहुत किया है
हम फिर से बहुत करेंगे
हमने बहुत किया है
पर अब हम नहीं कहेंगे
कि हम अब क्या और करेंगे

और हमसे लोग अगर कहेंगे कुछ करने को
तो वह भी कमी नहीं करेंगे।"[36]

"रघुवीर सहाय ने कडवी सच्चाइयों की सीधे-साधे और बेलाग ढंग से व्यक्त कर दिया है। रघुवीर सहाय की कविता का मुख्य स्वर लड़ना है और कवि भीड़ का कायल है। वह बदमाशों गंधों, आधे पागलों और मक्कारों के लिए एक जिम्मेदारी महसूस करता है।"[37]

"आत्महत्या के विरूद्ध" काव्यसंग्रह में रघुवीर सहाय की अनेक राजनीतिक कविताएँ अपनी समग्रता के कारण बड़ी महत्वपूर्ण हैं। रघुवीर सहाय की कविताओं में राजनीतिक परिस्थितियों, विडम्बनाओं और विसंगतियों का चित्रण है। "भाषण कविता में जनता को घोटकर कुछ भी पिला देने की प्रवृत्ति को ठीक मदरसे की शैली में लिखकर एवं सरकारी अकादमी तथा जनता के कर्णधार के पोपले यथार्थ को व्यक्त करके उन्होंने बडी गम्भीर बात कही है। इसी प्रकार "सफल जीवन" में सफल व्यक्तियों की भीड़ पर जो सैद्धान्तिक प्रतिवाद और विरोध भूलकर सफलता में मग्न हो जाती है, कवि कहता है -

"सफल था उनका जीवन सबका एक लक्ष्य था
सबकी एक सौगन्ध सब में एक सा प्रतिवाद
भ्रष्टाचार से
एक सा आत्माभिमान सबमें न कम न ज्यादा
सब खुश और समझदारी से दमदमाते हुए सबके
मुँह पर एक सा तेल।"[38]

सबके मुँह पर एक सा तेल पोतकर भी कवि सफल आदमी की तसवीर को और चमकाने के अभिप्राय से कहता है -

"खाना वह खा आया था अब तरस खा रहा था।
याद उसे गीत जो रफी गत बरस गा रहा था।"[39]

मतलब कि सफल आदमी की एक पहचान यह है कि उसका समूचा दिमागी ढाँचा हिन्दी की बम्बईया फिल्मों जैसा हो।

इसी संकलन में " खब्ती औरत" जैसी कविता भी है जो राजनीतिक प्रपंचों द्वारा साधारण आदमी की क्रमिक हत्या की ओर इशारा करके करूप तस्वीर प्रस्तुत करती है -

"एक औरत, दो बच्चे एक गोद एक पैदल
पता पूछती है, प्रधानमंत्री का
दस बरस बेदखल हुये उसे,
हुये पांच अध पागल।"[40]

एक ओर अधपागल औरत है जो प्रधानमंत्री का पता पूछती है और दूसरी ओर का दृश्य यह है -

"तब गजब का सफेद कुरता पहने हुए
बोला उप प्रधानमंत्री लेखक सभा में
हममें से हर एक कपड़ों के नीचे तो नंगा है
फिर मुस्कराया मशीन पर
रूप से अन्तर्ज्योति मूखड़े पर आयी
लेखराम दौड़े
इतने में चली गयी।"[41]

रघुवीर सहाय कहते हैं हमारे देश में "मशीन पर मुस्कराने" वाले मंत्री हैं, जिनको आम आदमी का दर्द समझने की फुरसत ही नहीं मिलती। निम्न कविताओं में "एक अधेड़ भारतीय आत्मा" में वर्तमान देशी राजनीति के खोखलेपन और निष्क्रियताका यथार्थ चित्रण खींचा गया है -

"हर संकट भारत में एक गाय
होती है

ठीक समय ठीक बहस कर नहीं सकती है।
राजनीति
बाद में जहाँ कहीं से भी शुरू करो
बीच सड़क पर गोबर कर देता है विचार
हाय हाय करते हुए हाँ-हाँ करते हुए हें-हें
करते हुये
समुदाय
एक हजार लोग ध्यानमग्न सुनते हुए
एक अदद रिरियाता है सितार
जगे रहो जाने किस वक्त सब एक मत हो जायें
जिसको आगे चलकर राजकाज करना है
दांत मांज रखता है मुस्काने के लिए
मुसकराकर प्राध्यापक परिषद में मुझे आँख मारी
गृहमंत्री ने
कहते तुम ठीक हो चुप रहो
और मेरे साथ बेईमानी में शरीक हो।
हाय हाय करता हुआ हाँ-हाँ करता हुआ
हें-हें करता हुआ।"[42]

कवि रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओं में राजनीतिक संदर्भों की चर्चा की है, रघुवीर सहाय की राजनीतिक कमेंट्री काफी "लाउड" है, रघुवीर सहाय के मिजाज के हिसाब से, ये अभिव्यक्तियाँ और राजनीतिक संदर्भ कविता को व्यापक धरातल देते हैं, जो उनकी कविता का खास गुण है -

"राजधानी से कोई कस्बा दोपहर बाद छटपटाता है,
एक फटा कोट एक हलती चौकी एक लालटेन,
दोनों बाप मिस्तरी, और बीस बरस का नरेन

दोनों पहले से जानते हैं, पेंच की मरी हुयी चूडियाँ
नेहरू-युग के औजारों को मुंशीलाल को सबसे बडी देन
नेहरू-युग की राजनीति आर्थिक
असफलता के लिये पेंच की भरी हुई चूडियाँ
से बेहतर कोई अपमान जुटा पाना मुश्किल है।"[43]

पूरी कविता में हिन्दुस्तान के पीडित आम आदमी के प्रति कवि की सहवेदना अत्यंत मुखर और मार्मिक है। कवि कह उठा है -

"कितना आसान है नाम लिख लेना,
मरते मनुष्य के बारे में क्या करूं क्या करूं
मरते मनुष्य का।"[44]

आत्महत्या के विरूद्ध में चीजे नंगी हो गयी है और व्यक्ति, समाज, संस्था, राजनीति तथा जनतंत्र की पोल खुल गयी है। कवि रघुवीर सहाय ने राजनीति की पोल खोलते हुए कहा है -

1. "बीस खडे अखबारों के प्रतिनिधि पूछे पचीस बार
क्या हुआ समाजवाद ?
कहे महासंघपति पचीस बार हम करेंगे
आँख मारकर पचीस बार वह हंसे पच्चीस बार
हंसे बीस अखबार।

× × × ×

राष्ट्र के महासंघ का यह संदेश है
जब मिलो तिवारी से हँसो-क्योंकि तुम भी तिवारी हो
जब मिले शर्मा से हँसी क्योंकि वह भी तिवारी है।"[45]

2· "सेना का नाम सुन देश प्रेम के मारे
मेजें बजाते हैं।
सभासद भद भद भद कोई नहीं हो सकती
राष्ट्र की
संसद एक मन्दिर है जहाँ किसी को द्रोही कहा नहीं
जा सकता।"[46]

प्रजातंत्र में दलबदल का रंग भी स्वतंत्रता के पश्चात दर्शनीय रहा है, यदि व्यक्ति के विचारों में परिवर्तन आये अथवा कोई सिद्धान्त या आदर्श उसे दल बदलने की प्रेरणा दे तब दल-बदल का औचित्य भी हो सकता है परन्तु जब स्वार्थों के वशीभूत होकर कुर्सी हथियाने के लिए अथवा किसी विरोधी दल को गिराकर आसन छीनने के लिए दल बदल किया जाए तो यह जनता की आकांक्षाओं के साथ खिलवाड ही कहा जाएगा। स्वतंत्रता के पश्चात राजनीति में इस प्रकार के सिद्धान्तहीन दल-बदल की प्रवृत्ति इतनी तीव्रता से बढ़ी की इस तरह के दल-बदलुओं के लिए "आया राम, गया राम" जैसे नाम का अविष्कार हो गया। समूची स्थिति इतनी निराशाजनक थी कि जनसाधारण में लोकतन्त्र के प्रति आस्था भी कम होने लगी। पुनः समझदारों और ईमानदारों के अल्पमत में पड़ जाने के कारण स्थिति और भी कष्टप्रद हो गयी है। मस्तिष्क की नहीं मतों की महत्ता स्वीकार की जाती है। पुनः स्वार्थों से भरी, वत्स राजनीति को अधोगामी बना देती है। कवि रघुवीरजी ने अपनी कविताओंमें राजनीति की गहरी विडम्बनाओं एवं निरर्थकता को कुरेदा है। तथा राजनीति द्वारा प्रदत्त संत्रास की जीवन्त अभिव्यक्ति की है।

निष्कर्ष

कवि रघुवीर सहाय ने युगीन शासन व्यवस्था को निकट से देखा है और उसके "पारदर्शी" चित्र प्रस्तुत किए हैं। उनके काव्य में राजनीति के भरपूर चित्र मिलते हैं। कवि ने भारत की बदलती राजनीति का यथा तथ्यांकन अपने काव्य

में किया है। कवि रघुवीर सहाय ने राजनीति का लेखा-जोखा चित्र प्रस्तुत किया है। भारतीय राजनीति की विसंगतियों पर भी कवि ने लेखनी चलायी, कवि ने देखा है कि युगीन राजनीति वायदे तो करती है, जनता में आशाएँ तो भरती हैं। पर वायदें कभी पूरे नहीं होते।

कवि रघुवीर सहाय ने राजनीति एवं प्रशासन पर आक्रोश व्यक्त किया है। जनतंत्र की यथार्थ स्थिति को उजागर किया है। दल बदल पर व्यंग्य कसा है और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के कारण प्रसंगों की ओर ध्यान आकर्षित किया है।

आज की राजनीति कुर्सी की राजीनीति है। रघुवीर सहाय ने इस कुर्सी राजनीति की विशेषताओं को उद्‌घाटित किया है और यह स्पष्ट किया है कुर्सी पर बैठा आज का व्यक्ति कुर्सी को छोड़ना नहीं चाहता उससे चिपके रहना चाहता है। उधर कुर्सी होती है जो उससे दूर होने का भय सदा ही उसे देती रहती है।

कवि रघुवीर सहाय ने अनुभव किया है कि आज के नेता जनसामान्य की पीडाओं पर, उनके कष्टों पर, उन पर आयी दैवी आपत्तियों पर झूठे आँसू बहाते हैं और आपत्तियों की आग पर रोटी सेंकते हैं। इन नेताओं के आदर्श खोखले हैं, चरित्र भ्रष्ट है। फिर भी अखबारों को अपना गीत गाने के लिए विवश करते हैं। ऐसे राजनीतिज्ञ लोगों पर भ्रष्टाचार पर कवि रघुवीर सहाय ने तीखा व्यंग्य किया है।

संदर्भ-सूची

1· नई कविता : कथ्य एवं विमर्श - डॉ·अरूण कुमार, चित्रलेखा प्रकाशन,170, आलोपी बाग, इलाहाबाद-211 006, पृ·79

2· वही, पृ·145

3· आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय, राजकमल प्रकाशन प्रा·लि·,8,नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110 002, प्र·सं·1967, पृ·89

4· वही, पृ·22

5· वही, पृ·88

6· काव्य परम्परा और नई कविता की भूमिका - कमल कुमार, प्रेम प्रकाशन मन्दिर, 30/2, बल्लीमारान, दिल्ली-110 006, प्र·सं·1988, पृ·37

7· आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय, राजकमल प्रकाशन प्रा·लि·,8,नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110 002, प्र·सं·1967, पृ·37

8· वही, पृ·62

9· वही, पृ·16

10· वही, पृ·90

11· वही, पृ·21

12· सीढ़ियों पर धूप में - रघुवीर सहाय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्र·सं·1960, पृ·149

13· आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय, राजकमल प्रकाशन प्रा·लि·,8,नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110 002, प्र·सं·1967, पृ·81

14· हँसो हँसो जल्दी हँसो - रघुवीर सहाय, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली-110 002, दि·सं·1976, पृ·34

15· साठोत्तरी हिन्दी काव्य में राजनीतिक चेतना - डॉ·एस·गम्भीर, विद्याविहार, 106/54 गांधीनगर, कानपुर-2080/2, प्र·सं·1992, पृ·55

16· आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय, राजकमल प्रकाशन प्रा·लि·,8,नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली - 110 002, प्र·सं·1967, पृ·20

17· हँसो हँसो जल्दी हँसो - रघुवीर सहाय, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली-110 002, द्वि·सं·1976, पृ·36

18· वही, पृ·26

19· वही, पृ·16

20· आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय, राजकमल प्रकाशन प्रा·लि·,8, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110 002, पृ·13

21· वही, पृ·90

22· वही, पृ·23

23· सीढ़ियों पर धूप में - रघुवीर सहाय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,वाराणसी, प्र·सं·1960

24· साठोत्तरी हिन्दी काव्य में राजनीतिक चेतना - डॉ·एस·गम्भीर, विद्याविहार 106/154 गांधीनगर, कानपुर-2080/2, प्र·सं·1992, पृ·129

25· आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय, राजकमल प्रकाशन, प्रा·लि·,8,नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110 002, प्र·सं·1967, पृ·14

26· वही, पृ·22

27· हँसो हँसो जल्दी हँसो - रघुवीर सहाय, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली-110 002, द्वि·सं·1976, पृ·10

28· आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय, राजकमल प्रकाशन प्रा·लि·,8,नेताजी, सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110 002, प्र·सं·1967, पृ·37

29· आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय, राजकमल प्रकाशन प्रा·लि·,8,नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110 002, प्र·सं·1967, पृ·38

30· हँसो हँसो जल्दी हँसो - रघुवीर सहाय, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली-110 002, द्वि·सं·1976, पृ·10

31· वही, पृ·12

32· वही, पृ·26

33· वही, पृ·3

34· वही, पृ·16

35· वही, पृ·27

36· वही, पृ·57

37· स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य : युगीन संदर्भ - डॉ·सुभद्रा पैठणकर, विद्याविहार, 106/154 गांधीनगर, कानपुर-2080/2, प्र·सं·1988, पृ·113

38· आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय, राजकमल प्रकाशन प्रा·लि·,8,नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110 002, प्र·सं·1967, पृ·69

39· वही, पृ·69

40· वही, पृ·70

41· वही, पृ·71

42· वही, पृ·89

43· वही, पृ·25

44· वही, पृ·26

45· वही, पृ·17

46· वही, पृ·79